साहित्य के विविध विमर्श

उच्चतर शिक्षा निदेशालय, पंचकूला, हरियाणा से अनुमोदित एवं
गुरु नानक गर्ल्ज कॉलेज यमुनानगर हरियाणा द्वारा आयोजित
एक दिवसीय बहुविषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र

संपादक
डॉ. गीतू खन्ना

संपादक मण्डल
डॉ. शक्ति, डॉ. अंजू, [illegible]
[illegible] गुप्ता, डॉ. अमनदीप कौर

ISBN : 978-93-94628-38-0

© : लेखक

मूल्य : ₹ 500/-

प्रथम संस्करण : सन् 2024

प्रकाशक : विकास बुक कम्पनी
4378/4-बी, जेएमडी हाउस,
मुरारिलाल गली, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मोबाइल : 9643631687
email : vbcompany22@gmail.com

आवरण : के. एस. ग्राफिक्स

शब्द-संयोजन : सानिया कम्प्यूटर्स, दिल्ली

मुद्रक : विशाल कौशिक ऑफसेट प्रेस,
दिल्ली-110093

Sahitya Ke Vividh Vimarsh *Edited by* Dr. Geetu Khanna
Editorial Board : Dr. Shakti, Dr. Anju, Sandeep Kaur, Dr. Laxmi Gupta, Dr. Amandeep Kaur

11. साहित्य और राजनीति 88
नितिन सुभाषराव कुंभकर्ण
12. Role of communication shaping the Indian literature 93
Dr Gunjan Sharma
13. साहित्य और बाल विमर्श 98
डॉ वन्दना गुप्ता
14. साहित्य में स्त्री विमर्श 104
साईमीरा **जोशी**
15. साहित्य में बाल विमर्श 108
अमित कुमार
16. डॉ॰ शांतिस्वरूप कुसुम के काव्य में पौराणिक कथाओं में नारी और समाज 113
रवि कुमार
17. Yog in Indian Literature 118
Dr Meenakshi Gupta
18. साहित्य में सांस्कृतिक पक्ष 123
डॉ. गीतू खन्ना
19. हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विमर्श 130
डॉ. शक्ति बुद्धिराजा
20. हिन्दी साहित्य और बाल विमर्श 136
डॉ. अंजु बाला
21. हिन्दी साहित्य पर राजनीति का प्रभाव 145
संदीप कौर
22. ग्रामीण संदर्भ एवं स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास 152
डॉ. लक्ष्मी गुप्ता
23. हिन्दी साहित्य में बाजारवाद 160
डॉ. अमनदीप कौर
24. हिंदी साहित्य में बाल कथा विमर्श 166
मिस दीपमाला
25. भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का वर्तमान स्वरूप और इसका महत्त्व 173
मोनिका चोपड़ा
26. वर्तमान युग में बोध एवं आचरण में सामंजस्य जैन-आदिपुराण के संदर्भ में 177

ग्रामीण संदर्भ एवं स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

डॉ. लक्ष्मी गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
गुरूनानक गर्ल्स कॉलेज, यमुनानगर, हरियाणा

19वीं शताब्दी के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों द्वारा स्पष्ट है कि भारतीय विचारकों का दृष्टिकोण मानवतावादी था। पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य के माध्यम से भारत में मानवतावाद की लहर का प्रादुर्भाव हुआ और दूसरी ओर भारतीय दर्शन वेदान्त दर्शन, मानवतावादी विचारधारा के प्रेरक का कारण बनी। बीसवीं शताब्दी के आरंभ के साथ ही भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना का पूर्णोदय हुआ। इस युग के विचारकों ने भारत के विविध धर्मों एवं संस्कृतियों के मध्य समन्वय स्थापित करके अपनी उदारवादी विचारात्मकता का परिचय दिया। सन 1919 से लेकर 1936 के मध्य समस्त सांस्कृतिक भावनाओ का उद्घाटन ग्रामीण व मध्यवर्ग को आधार बनाकर किया गया। इस युग के उपन्यासकारों ने समस्त प्रकार की संकीर्णताओं का विरोध करते हुए अपने उपन्यासों के अंतर्गत सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रगतिशील तत्वों का प्रयोग किया। जिसमें मुंशी प्रेमचन्द के गोदान, रंगभूमि, कर्मभूमि, मंगलसूत्र, जयशंकर प्रसाद का कंकाल, वृन्दावन लाल वर्मा का अंचल मेरा कोई, निराला का कुल्लीभाट आदि उपन्यासों में विश्व बंधुत्व की भावना, पाश्चात्य एवं प्राच्य संस्कृति का संघर्ष, आधुनिक नवीन सांस्कृतिक चेतना तथा मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा का सशक्त प्रभाव देखा जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की सबसे प्रमुख उपलब्धि ग्रामीण यथार्थ की प्रतिष्ठा है। समाजवादी साहित्य के आविर्भाव से हिन्दी उपन्यास साहित्य

वास्तविक जगत में कम बल्कि कल्पनाओं, भावनाओ एवं आदर्शों के लोक में अपेक्षाकृत अधिक विचरण करता रहा। समाजवादी चेतना से प्रभावित उपन्यासकारों ने पहली बार उपन्यास साहित्य को ग्रामीण जीवन के इतने निकट और इतने ठोस यथार्थ की भूमि पर खडा किया। उनका संघर्ष कहीं अधिक सामाजिक सत्य है ;जो सत्य के नीचे गहराई में प्रगतिशील शक्तियों के बीच अनवरत रूप में गतिशील है। साथ ही, सामंतवाद, महाजनवाद तथा साम्राज्यवाद के हथकंडों से सामाजिक जीवन के भीतर प्रगतिशील चेतना को जागृत करने में इन उपन्यासकारों ने यथार्थ को बहुत गहरे तक प्रभावित किया। जिसके परिणाम स्वरूप वे ग्रामीण जीवन के वास्तविक चित्रण को सहज -स्वाभाविक रूप में अंकित कर सके। समाजवादी ग्रामीण चेतना ने प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। उपन्यासकारों ने ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से आए परिवर्तनों को देखा और उसे रेखांकित करने का प्रयास किया। साथ ही, उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़कर समाजवाद को विकसित करते हुए ग्रामीण यथार्थ की पहचान को उत्कृष्ट रूप प्रदान किया। इन उपन्यासकारों ने युग के बदलावों और उनके अंतर-विरोधों को परखते हुए जनमानस की सामाजिक व आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में पड़ताल की। इस परंपरा के लेखकों ने स्वातंत्र्योत्तर युग के बदलते परिवेशों, व्यवस्था के अंतर-विरोधों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। इनमें नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, रांगेय राघव, शिव प्रसाद सिंह, भैरव प्रसाद गुप्ता आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं। जिन्होंने ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न आयामों को आधार बनाकर इस प्रगतिशील विचारधारा को अभिव्यक्ति प्रदान की। उक्त रचनाकारों के उपन्यासों के अध्ययन उपरांत ऐसा प्रतीत होता है कि इन उपन्यासकारों ने परिवर्तित ग्राम रुचि और परिवेशगत जीवन की प्रामाणिकता के स्तर पर जाकर उनकी समस्याओं को बताने का प्रयास किया है।

नागार्जुन समाजवादी चेतना के प्रखर कथाकार हैं। अपने ग्रामीण संस्कारों के कारण वे अपने उपन्यासों में ग्रामीण-जीवन के यथार्थ को चित्रित करने में सफल हुए हैं। नागार्जुन ने बिहार के मिथिलांचल को अपने उपन्यासों का कथा क्षेत्र बनाया। जहां किसानों का शोषण, सामाजिक जीवन की गरीबी, भुखमरी, उत्पीड़न, बेमेल विवाह, उपेक्षा, अत्याचार, विधवा विवाह तथा अन्य समस्याएं एवं विसंगतियां व्याप्त हैं। नागार्जुन सामान्य जन की मुक्ति के लिए संघर्ष का आह्वान करते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण समाज की समस्याओं के समाधान खोजने के भी प्रयास किये हैं। उनका मानना है कि सामंती अवरोधों को समाप्त किए बिना भारत में जनवादी क्रांति संभव नहीं होगी। उनका मानना था कि सेवा समिति, विधवा आश्रम, अनाथालय, महिला हितकारिणी सभा तथा सैकड़ों संस्थाएं पुरानी पड़ गई

हैं। इनमें जो संस्थाएं चलाता भी है, उन्हें भी गुटबाज लोग गिद्धों की तरह नोच -नोच कर ही खा रहे हैं।

नागार्जुन बिहार के निम्नमध्यवगीय मैथिल-ब्राह्मण समाज में जन्म लेकर प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में विधवाओं के तिरस्कृत व यातनापूर्ण जीवन के सहभागी रहे हैं। उनका सम्बन्ध परम्परावादी और रूढ़िवादी जड़ परिवार से रहा है। अतः उन्होंने उस समाज की रूढ़ियों को अत्यन्त निकट से देखा और पहचाना है। उनके प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' की विषय-वस्तु एक उपेक्षित, अपमानित और यातनापूर्ण वैधव्य जीवन जीती गौरी से सम्बन्धित है। जिसका पति एक पुत्र उमानाथ और एक पुत्री प्रतिभा को छोड़कर इस संसार से विदा हो गया। गौरी का देवर जयनाथ रूग्ण मानसिकता का एक कामुक पुरुष है। जो गौरी को अपनी कामुकता का शिकार बनाता है। गौरी गर्भवती हो जाती है। यहीं से विधवा गौरी के सामाजिक अपमान, तिरस्कार और यातनापूर्ण जीवन की शुरुआत होती है। इस स्थिति का वास्तविक कारण खोजती हुई गौरी इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि यह 'दरिद्र कुल में लड़की व्याहने का ही परिणाम था।'[1] इस उपन्यास में वैधव्य-जीवन जीती ब्राह्मण स्त्रियों की मुक्ति का मार्ग चिता की ज्वाला के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसका कारण तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को वास्तविक रूप में निरूपित करने का आग्रह ही है। इसीलिए लेखक ने तत्कालीन परिस्थिति में इस समस्या का कोई प्रगतिशील समाधान प्रस्तुत न कर गौरी की चेतना के प्रगतिशील रूप को केवल वैचारिक स्तर पर ही सीमित रखा है। लेकिन अन्य उपन्यासों उग्रतारा और दुःखमोचन में विधवा समस्या का समाधान पुनर्विवाह में खोजते हैं। यहां हम नागार्जुन को प्रेमचन्द से एक कदम आगे बढ़ा हुआ पाते हैं क्योंकि प्रेमचन्द वरदान, प्रतिज्ञा और प्रेमाश्रम में विधवा समस्या का समाधान आश्रम में खोजते हैं और नागार्जुन पुनर्विवाह में।

भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक सामाजिक बुराई है। रतिनाथ की चाची, पारो, और उग्रतारा उपन्यासों में नागार्जुन ने अनमेल विवाह की समस्या के सामाजिक और आर्थिक कारणों पर प्रकाश डाला है। अनमेल विवाह का दुष्परिणाम या तो वैधव्य जीवन में होता है या फिर किसी नवयुवक के साथ भाग जाने में। नयी पौध' में खोखा पंडित अपनी पन्द्रह वर्षीया नातिन बिसेसरी का व्याह साठ वर्षीय बूढ़े के साथ कर रहे थे। चूंकि नागार्जुन एक प्रगतिशील चेतना सम्पन्न कथाकार हैं इसलिए बिसेसरी के अनमेल विवाह का विरोध गांव के युवकों से कराते हैं। इस प्रकार इस विवाह से परम्परागत रूढ़िवादिता का अन्त होता है और नयी पौध की विजय होती है।'

नागार्जुन की आस्था और विश्वास देश की नयी पीढ़ी में है। प्रगतिशील युवा

पीढ़ी के हाथों में देश का भविष्य और सुरक्षा का दायित्व इस बात पर निर्भर करता है कि वह युवा पीढ़ी अपनी समग्र प्रगतिशील चेतना और विकास से किस प्रकार देश का नव निर्माण करेगी। आजादी से पूर्व भारतवासियों के सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति का था। मुक्ति आन्दोलनों में किसान-मजदूरों के साथ छात्रों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने देश के नव-निर्माण के लक्ष्य को सामने रखकर, एकजुट होकर साम्राज्यवादी एवं प्रतिक्रियावादी शक्तियों से अपने संघर्ष को आगे बढ़ाया। नागार्जुन ऐसी ही प्रगतिशील नयी पीढ़ी को अपना समर्थन देते हैं। 'दुःखमोचन' के दुःखमोचन, कपिल और वेणी माधव 'नयी पौध' के दिगम्बर और वाचस्पति 'बाबा बटेसरनाथ' के जैकिसुन और जीवनाथ 'बलचनमा' का बलचनमा, 'वरुण के बेटे' के मोहन मांझी, मंगल 'रतिनाथ की चाची' का ताराचरण आदि युवा पीढ़ी के ऐसे लोग हैं जिन पर ग्रामीण समाज के नवनिर्माण का दायित्व है।[2]

हिन्दी में ग्रामीण जीवन पर लिखने वाले रचनाकारों के क्रम में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम एक ऐसे समर्थ रचनाकार के रूप में लिया जाता है जिन्होंने ग्रामीण जीवन को एक विशेष प्रकार की अभिव्यक्ति दी। एक ऐसी अभिव्यक्ति जिसमें ग्रामीण आत्मीयता की गंध है, जो रेणु को अन्य ग्रामीण जीवन के कथाकारों से अलग करती है और कुछ मायनों में विशिष्ट भी। वे हिन्दी ग्रामीण उपन्यास साहित्य के पहले रचनाकार हैं जिनमें गांवों की परिवर्तित, अनगढ़, राजनीतिक चेतना का स्वरूप अपनी पूरी गत्यात्मकता के साथ रूपायित हुआ जो रेणु को विशेष रूप से रेखांकित करता है। प्रख्यात रूसी आलोचक बेलिस्की ने कहा है कि ष्साहित्य के लिए हमेशा एक नया 'मॉडल' चाहिए और सबसे नया मॉडल है प्रकृति।'[3]

रेणु का सम्बन्ध समाजवादी चिंतन से है। भारत में जिसके प्रवक्ता डा० लोहिया और जयप्रकाश नारायण रहे हैं। उनके उपन्यासों का कथांकन बिहार का पूर्णिया जिला है और इसमें संदेह नहीं कि रेणु अपने अंचल के रग-रेशे से परिचित हैं। रेणु जिस समय कथा-क्षेत्र में आये, हिन्दी का कथा-साहित्य नगर-जीवन की कुछ खास समस्याओं के घेरे में ही सीमित था। 'मैला आंचल' का प्रकाशन इस प्रकार की रचनाओं से दबे हुए पाठक वर्ग के लिए सुबह की ताजा बयार से कम सुखद अनुभूति देने वाला नहीं था। 'मैला आंचल' कृति ने उन्हें हिन्दी कथा साहित्य की पहली पंक्ति मे लाकर खडा किया। रेणु के उपन्यासों के माध्यम से पाठक ने एक ग्रामीण अंचल को उसके प्रकृत रूप में देखा और अनुभव किया। ग्रामीण जनों के आचार-विचार बोली- भाषा, मान्यताएं-विश्वास, गीत-संगीत, पर्व-त्योहार, सुख-दुख इतने सहज और विश्वसनीय बनकर सामने आते हैं कि लगता है कि सचमुच हमारे

ग्रामीण जीवन में ऐसा बहुत कुछ है जो अब तक उपेक्षित और त्याज्य रहा है। रेणु ने बड़ी सूक्ष्म भंगिमाओं में बड़ी आत्मीयता के साथ इस उपेक्षित और त्याज्य को उठाया और उभारा, उसे सजीव रूप में प्रस्तुत किया। रेणु ने धरती को पूरी तरह परखा और पहचाना था तथा समस्त सुधार संभावनाओं से प्रेरित होकर उसे प्रस्तुत किया था। उनके उपन्यासों के अधिकांश पात्र ग्रामीण जीवन की सीमाओं और संकीर्णताओं से ग्रस्त बौने पात्र हैं तो तमाम पात्र ऐसे भी हैं जो इन विडंबनाओं के खिलाफ जमकर संघर्ष भी करते हैं। इनके बहाने उन्होंने ग्रामीण व्यक्तित्व की खोज की है और उस व्यवस्था का दिग्दर्शन भी कराया है जिसमें अर्थसंकट, अशिक्षा, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, रिश्वतखोरी, ठगविद्या आदि ने जड़ें जमा ली हैं। ये ग्रामवासी सात महीने बथुआ, पाट के साग से पेट भरते हैं। सतुआ-खम्हार खाकर जीते हैं लेकिन पातकी गान और कीर्तन द्वारा गांवों को अनुगुंजित किये रहते हैं। लेखक उनके प्रति पूर्ण आशावान है और 'मैला- आंचल' के नायक डा० प्रशान्त के माध्यम से कहता है— ष्आंसू से भोगी धरती पर प्यार के पौधे लहराएंगे। मैं साधना करूंगा ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आंचल तले।"[4]

प्रेमचन्द के बाद ग्रामीण-जीवन के आग्रही कथाकार के रूप में रेणु का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने हमेशा अपने पैर तले की जमीन को ही अपने उपन्यासों का आधार बनाया। इसलिए गांव की राजनीति, संस्कृति और कला का रुप उनके उपन्यासों में प्राप्त होता है। उनके उपन्यासों की कथा की पृष्ठभूमि बिहार के पूर्णिया जिले का ग्रामीण क्षेत्र है। यूं भी एक सीमित क्षेत्र को अपने लेखन का आधार बनाना कम जोखिम भरा कार्य नहीं है परन्तु इन उपन्यासों में ग्रामीण-जीवन के जितने विस्तृत एवं बोलते चित्र दिखाई देते हैं शायद उतने अन्य ग्रामीण पृष्ठभूमि के उपन्यासों में नहीं। इन उपन्यासों में गांवों की छोटी-छोटी घटनाओं, आचार-विचार, रीति-रिवाज, रूढ़ि-अन्धविश्वास, राजनीतिक उथल-पुथल तथा शोषण आदि के इतने सही और चलते-फिरते चित्र मिलते हैं कि समूचा ग्रामांचल मुखर हो उठता है। स्वाधीनता के बाद गांवों का बदलाव और उस बदलाव में अवसरवादी नेताओं का उतार-चढ़ाव तथा उन्हें वेनकाब करने में युवा पीढ़ी का संघर्ष आदि जिस ढंग से उनके उपन्यासों में प्रस्तुत है उससे हिन्दी कथा साहित्य में रेणु की अलग पहचान बनती है। उनके उपन्यासों में चित्रित गांवों की समस्याएं आज के प्रत्येक भारतीय गांव की समस्यायें हैं।

ग्रामीण-जीवन में शोषण, निर्धनता और वेबसी का अत्यन्त यथार्थ अंकन रेणु के उपन्यासों में हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेमचन्द के बाद पहली बार भारतीय ग्रामों की आत्मा अपनी पूरी सच्चाई के साथ उनके उपन्यासों में स्पष्ट हुई है। 'मैला आंचल' का मेरीगंज गांव अनन्य जड़ताओं का शिकार एवं अभावों का विपुल भंडार है। डॉ० प्रशान्त इस गांव में आकर बड़ा आश्चर्यचकित होता है जब वस्त्रों के अभाव में निमोनिया के रोगी को पुआल में सिर छुपाए हुए देखता है। इस उपन्यास में पूर्णिया जिले के मेरीगंज गांव को पिछड़े गांवों का प्रतीक मानकर वहां के जन-जीवन का सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक स्वरूप चित्रित करने का अत्यन्त सफल प्रयास लेखक ने किया है।

उपन्यास का शीर्षक 'मैला आंचल' स्पष्टतः ग्रामीण अंचल की ओर संकेत करता है। यह ग्रामीण अंचल अज्ञान, अन्धविश्वास, रूढ़ियों, दरिद्रता, बीमारी और जमींदारों के द्वारा किये जा रहे शोषण के कारण अपनी उज्ज्वलता को खोकर मैला हो गया है।

रांगेय राघव समाजवादी दृष्टिकोण के लेखक हैं। वे समस्याओं के मूल में उन कारणों की खोज करने में सफल हुए हैं। लेखक का मत है कि वर्तमान व्यवस्था का रूप शोषण पर आधारित है। इसलिए आजादी के बाद जातिवाद को बढ़ावा मिला। भारत की इस जातिगत राजनीति से गांव तबाह हो रहे हैं। समूचे गांव जातिगत आधार पर विभक्त हैं। 'आखिरी आवाज' का स्यौपाल सरपंच से कहता है— "भई बाभन खड़ा हुआ है तो बाभन के जाये को तो बाभन की तरफ जाना चाहिए क्योंकि घुटना पेट की तरफ मुड़ता है। जब नीचे से लेकर ऊपर तक जवाहर सिंह, कचौरी सिंह, बहादुर सिह - सब ठाकुर ही ठाकुरों का गठबंधन हो तो ऐसे में बाभनों में भी एक सिंह पैदा हुआ है तो उसको क्या हार जाने दिया जायेगा। रांगेय राघव का यथार्थ एक समाजवादी लेखक के यथार्थ जैसा ही है। फिर भी वह सामाजिक, अस्वस्थ और प्रतिक्रियावादी ताकतों को अपने ढंग से उभारते हैं। इनके पात्र सामाजिक अत्याचारों को अपनी नियति समझकर संगठित होकर संघर्ष करते हैं।[5]

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ और समाजवादी चेतना का सफल चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द गांव के जिस उपेक्षित अंश को अपना संवेदनात्मक संस्पर्श नहीं दे सके थे और तमाम नारों- आन्दोलनों के प्रवाह में उपन्यासकारों की नयी पीढ़ी भी जहां तक नहीं पहुंच सकी थी, उस दलित मानव-समाज के दुःख-दर्द को शिवप्रसाद सिह की लेखनी ने पूरी सजगता और संजीदगी के साथ अभिव्यक्त किया है। प्रेमचन्द के समय में शोषण की प्रक्रिया बड़ी साफ और सीधी थी लेकिन आजाद भारत में जमींदारी व्यवस्था खत्म हो जाने के बाद उसमें अनेक अडचनें आई। सामाजिक व्यवस्था और स्तर बदल जाने से उसकी प्रक्रिया भी काफी जटिल हो गयी। इस सम्पूर्ण स्थिति को पकड़ने व अभिव्यक्त करने

के लिए सर्वथा नयी दृष्टि की आवश्यकता थी। शिवप्रसाद सिंह ने इन तमाम ऐतिहासिक जरूरतों को समझते हुए बड़ी सूझ-बूझ के साथ इन्हें अपने उपन्यासों में उभारा है। एक ओर जहां इनमें ग्रामीण जीवन की समस्त विद्रूपताओं को उनके यथार्थ रूप में उघाड़ने की निर्ममता है, वहीं दूसरी ओर भावी जीवन के प्रति आस्थावान संकेत भी। इसमें संदेह नहीं कि शिवप्रसाद सिंह की दृष्टि गांवों के प्रति रोमांटिक नहीं है। इसके बावजूद भी शिवप्रसाद सिंह ने गांव के जीवन को प्रेमचन्द की परंपरा में ही उजागर किया है।

शिवप्रसाद सिंह के साथ ही रामदरश मिश्र के उपन्यास भी ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को उजागर करने तथा व्यवस्था की दहलीज तक दबी, शोषित, पीड़ित जनता की आवाज उठाने से ओत-प्रोत है। उनके लेखन की आधार भूमि देवरिया जनपद है। डा० मिश्र के लेखन का यह क्षेत्र तराई क्षेत्र का इलाका है। जहां की मिट्टी में नमी है और बरसात के पानी के लिए निकासी की कोई व्यवस्था नहीं है। जहां की हवा में नमी है, जहां गरीबी है, इसलिए वहां के लोगों की आंखों में भी बराबर पानी भरा रहता है। षमिट्टी से लेखक की आंखों तक फैले हुए जल की भाषा को रामदरश मिश्र ने व्यक्तिगत अनुभव और जनपदीय परिचय के रूप में जाना है। उनके उपन्यासों में प्राकृतिक और मानवीय जल बिम्बों की बड़ी आवृत्ति है, शायद इसीलिए जाने-अनजाने उनके उपन्यास जल के प्रतीकों से ही बंधे हैं।''[6]

श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' भी भारतीय ग्रागीण की विद्रूपता, भोलेपन तथा अटपटी जिन्दगी का लेखा- जोखा है। यह उपन्यास कथा साहित्य में कई प्रश्नों को जन्म देता है। आज के भारतीय जीवन की विभिन्न स्थितियों के प्रभावी चित्र राग दरबारी में उभरे हैं। आजाद भारत की राजनीति, विकास कार्यों में धांधली , सरकार और उसकी नौकर- शाही की भ्रष्टाचारी आदि तमाम समस्याएं इसमें चित्रित हुई हैं।"राग दरबारी' घटना प्रधान तथा वातावरण की सृष्टि करने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। यथा ष्चालू फैशन के हिसाब से ड्राइवर ने ट्रक का दाहिना फाटक खोलकर डैने की तरह फैला दिया था। इससे ट्रक की खूबसूरती बढ़ गई थी। साथ ही इस बात का खतरा मिट गया था कि उसके होते हुए कोई दूसरी सवारी भी दूसरी तरफ भी निकल सकती है।"[7]

इन लेखकों के उपन्यास हमें बार-बार इस तथ्य की ओर मुखातिब करते हैं कि गांवों की आर्थिक-सामाजिक बुनियाद को बदले बिना उनका ऊपरी ढांचा नहीं बदला जा सकता और उसमें जो भी परिवर्तन ऊपरी तौर पर किये जायेंगे वे उन तमाम विकृतियों को ही जन्म देंगे जो कि मात्र आज सतह पर दिखाई दे रही हैं। इन लेखकों ने यथार्थ को मानव मुक्ति की सही सोच से जोड़ते हुए अपनी रचनाओं

में कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। ग्रामीण जीवन की बुनियादी समस्याओं को रेखांकित करते हुए उन्होंने आजाद हिन्दुस्तान की अपनी परिकल्पना के तहत हर स्तर पर उन ताकतों से संघर्ष किया है जो उनकी इस परिकल्पना की पूति में बाधक थीं। निःसंदेह ये ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्य को मुकम्मल जिन्दगी के सन्दर्भ में ही देखा और ग्रहण किया।

संदर्भ

1. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची
2. डा० सुरेश सिन्हा-हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास-पृ० 514-515
3.. डा० शिव कुमार मिश्र - प्रेमचन्द विरासत का सवाल, पृ० 12
4. फणीश्वरनाथ नाथ रेणु, मैला आंचल
5. रांगेय राघव, आखिरी आवाज
6. निर्मल कुमारी वार्ष्णेय - प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में प्रगतिशीलता, पृ० 247)
7. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ० 9
8. नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ
9. भैरव प्रसाद गुप्त - मशाल, भूमिका
10. सुभाष चन्द शर्मा 'मेहता' - प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास
11. डॉ० प्रेमकुमार - स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी उपन्यास, पृ०